18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 602

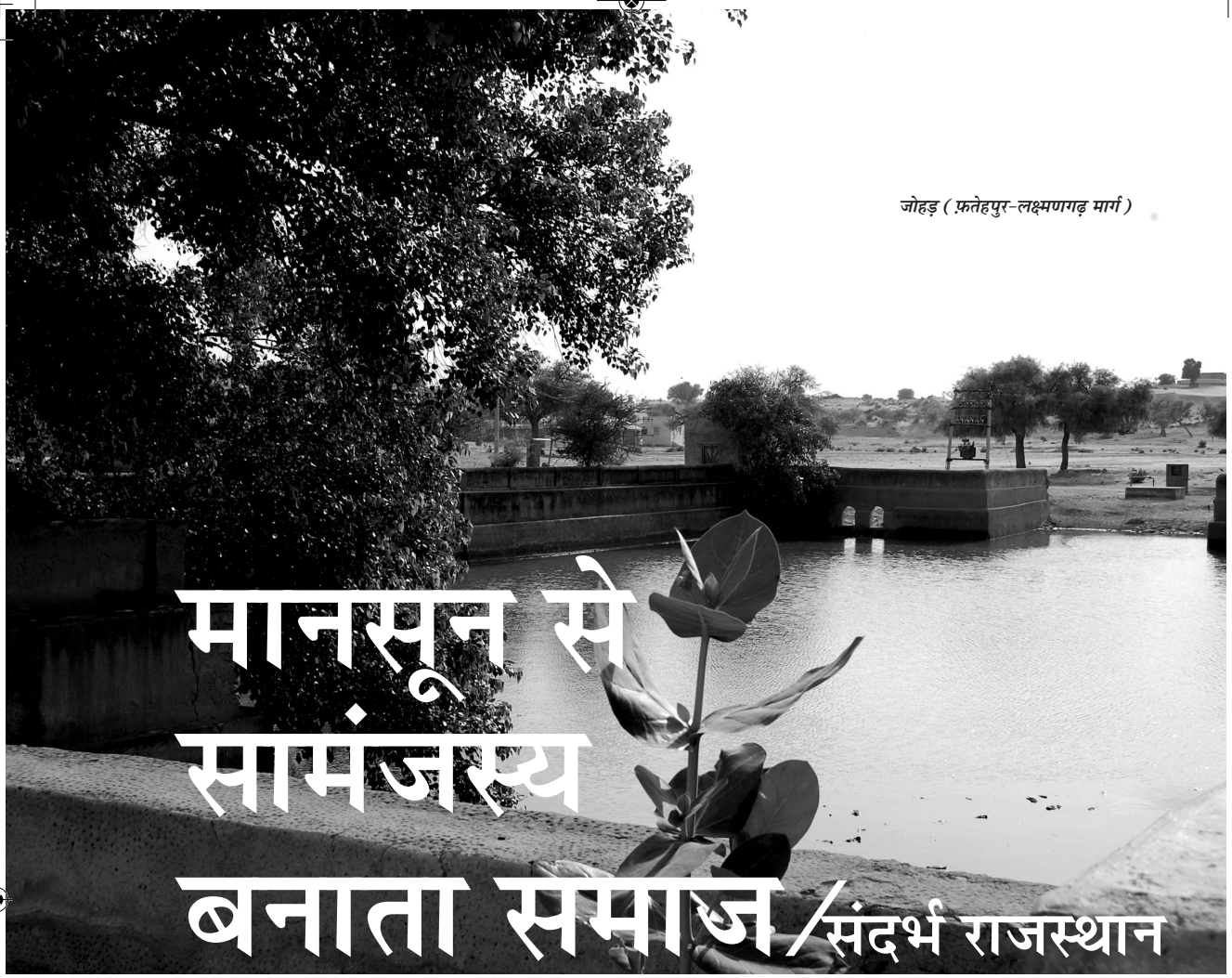

जोहड़ (फ़तेहपुर-लक्ष्मणगढ़ मार्ग)

मानसून से सामंजस्य बनाता समाज/संदर्भ राजस्थान

मयंक कुमार

अल्लाह मेघ दे, पानी दे, छाया दे, रे रामा मेघ दे
श्यामा मेघ दे
अल्लाह मेघ दे, पानी दे, छाया दे, रे रामा मेघ दे
आँखें फाड़े दुनिया देखे, हाय ये तमाशा
आँखें फाड़े दुनिया देखे, हाय ये तमाशा
है ये विश्वास तेरा, है तेरी आशा, अल्लाह मेघ दे
अल्लाह मेघ दे, पानी दे, छाया दे रे
रामा मेघ दे

— *गाइड,* 1965

घनन-घनन घिर-घिर आये बदरा, घन घनघोर कारे छाये बदरा
धमक-धमक गूँजे बदरा के डाके, चमक-चमक देखो बिजुरिया चमके
मन धड़काए बदरवा, मन धड़काए बदरवा, मन-मन धड़काए बदरवा
काले मेघा काले मेघा, पानी तो बरसाओ
बिजुरी की तलवार नहीं, बूँदों के बान चलाओ, मेघा छाये बरखा लाए

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 603

घिर-घिर आये घिर के आये,
कहे ये मन मचल-मचल
न यूँ चल सँभल-सँभल, गये दिन बदल, तू घर से निकल
बरसने वाला है अमरत जल, दुविधा के दिन बीत गये, भैया मल्हार सुनाओ
घनन-घनन घिर-घिर आये बदरा, रस अगर बरसेगा, कौन फिर तरसेगा
कोयलिया गाएगी, बैठेगी मुँडेरों पर, जो पंछी गाएँगे, नये दिन आएँगे
उजाले मुस्कुरा देंगे, अँधेरों प्रेम की बरखा में भीगे-भीगे तनमन
धरती पे देखेंगे पानी का दरपन
बरसो रे मेघा, मेघा-बरसो रे ए मेघा बरसो
मीठा है, कोसा है, बारिश का बोसा है
जलचल-चल-थल-ए चलचल-बहता चल
गीलीगीली-माटी गीली माटी के
चल घरौंदे बनाएँगे रे
हरी भरी अम्बी अम्बी की डाली
मिल के झूले झुलाएँगे रे
धन बैजू गजली हल जोते सबने
बैलों की घंटी बजी और ताल लगे भरने
रे तैर के चली मैं तो पार चली
पार वाले पर ले किनारे चली
रे मेघा नन्ना रे

— *लगान,* 2001

कृषि-प्रधान भारतीय समाज में मानसून के आगमन के प्रति इतनी उत्सुकता कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु एक इतिहासकार की नज़र से देखें तो इन अनिश्चितताओं में मानसून से जुड़े कई मुद्दे तहक़ीक़ात के योग्य नज़र आते हैं। जैसे, क्या मानसून का स्वरूप साल-दर-साल एक सा ही रहता है? अगर नहीं, तो इसके स्वरूप में बदलाव की क्या वजह है? इसके साथ-साथ एक इतिहासकार यह समझने की भी कोशिश करता है कि मानव-समाज का मानसून से कैसा संबंध रहा है? मानसून किस तरह से मानव-जीवन को प्रभावित करता रहा है, तथा मानसून के स्वभाव में आने वाले बदलावों से मनुष्य किस हद तक और किस तरह से तारतम्य बनाने में सफल रहा है?[1]

मैं इस लेख में अपनी बात औपनिवेशिक काल के पहले के राजस्थान में समाज और मानसून के संबंधों पर केंद्रित करूँगा। इसकी एक बड़ी वजह यह है कि इस इलाक़े में राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर में संग्रहीत प्रचुर स्थानीय स्रोत उपलब्ध हैं। साथ-ही हमें ख़ासी तादाद में साहित्यिक स्रोत भी मिलते हैं। इन दोनों पारम्परिक स्रोतों के अतिरिक्त हमें इस इलाक़े से काफ़ी पुरातत्विक साक्ष्य भी मिलते हैं।[2] इनकी चर्चा मैं आगे करूँगा।

मानसून एक गतिशील प्रक्रिया है जो साल-दर-साल और कभी-कभी तो एक साल में ही अपना स्वरूप बदलती रही है। अर्थात् मानसून और उससे होने वाली बारिश एक स्थायी और स्थिर प्रक्रिया नहीं है।[3] पी.सी.डी. मिल्ली व अन्य ने अपने लेख 'स्टेशनॅरिटी इज़ डेड' में लिखा है : अब

---

[1] अनुपम मिश्र (1995); अनिल अग्रवाल और सुनीता नारायण (सम्पा.) (1997).

[2] मयंक कुमार (2013).

[3] पी.के .दास (1968); बी.ए. वॉरेन (1987) : 137-58-76.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 604

तो जल प्रबंधन से जुड़े हुए विज्ञान ने भी यह बात स्वीकार कर ली है कि पर्यावरणीय कारक जैसे मानसून आदि निरंतर परिवर्तनशील रहते हैं।[4] उनके स्वभाव में एक लम्बी अवधि की अपरिवर्तनशीलता देखना ग़लत होगा। यह बात हमें सही भी लगती है। अगर हम मानसून की बात करें तो यह साफ़ नज़र आता है कि यह एक स्थिर प्रक्रिया नहीं है। इसी बात को अगर हम मानसून के कारण होने वाली बारिश और उससे होने वाले प्रभावों के संदर्भ में देखें तो नज़र आएगा कि निम्नलिखित ऐतिहासिक दस्तावेज़ों से, जो जयपुर राज्य के दो इलाक़ों से संबंधित हैं, परस्पर विरोधाभासी सूचनाएँ मिल रही हैं। आषाढ़ बदी एक को रूपराम अपनी अर्जदास्त के इलाक़े में सूखा पड़ने की बात करते हैं जबकि पुरोहित हरसराम भादवा सुदी छह को कहते हैं कि अच्छी बारिश हुई है।[5]

किसी भी किसान के लिए कभी भी और कितनी भी बारिश होना ज़रूरी नहीं है, बल्कि उसके लिए ज़रूरी है सही समय पर और सही मात्रा में बारिश होना। संवत् 1774 में भादवा बदी सात को वकील कंवरचंद और साहिबराम ने आमेर दरबार को सूचना भिजवाई कि भादवा में देरी से बारिश आने की वजह से सिर्फ़ मोठ की ही बुआई सही हो सकी है।[6] अर्थात् अगर मानसून के महीनों में बारिश देरी से होती है तो किसान अपनी मर्ज़ी की फ़सल कम समय में और कम पानी वाले मोटे अनाज की पैदावार ही कर पाता है।

कृषि-प्रधान भारतीय समाज में मानसून के ऊपर निर्भरता इस बात के लिए प्रेरणा देती रही होगी कि मानसून के आगमन, उसके स्वरूप, मानसून के दौरान बारिश की मात्रा आदि का पुर्वानुमान लगाने की कोशिश की जाए। यह बात इसलिए भी ज़रूरी थी कि आमतौर पर पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में और ख़ास तौर पर राजस्थान के विशेष संदर्भ में जल का मुख्य स्रोत मानसूनी बारिश ही था। कहीं-कहीं जहाँ भू-जल खारा था वहाँ पर मानसूनी बारिश ही जल का एकमात्र स्रोत थी। ऐसे हालात में मानसून का मनमौजी स्वभाव समझने की कोशिशें होना स्वाभाविक ही है। संस्कृतनिष्ठ पंचांगों और कहावतों के अनुसार माना जाता है कि मानसून एक निश्चित अवधि के उपरांत सूर्य और नमी की गति में प्रत्यार्वतन की वजह से उत्पन्न होता है। अर्थात् तत्कालीन समाज मानसून को हवा के रुख़ में आये बदलाव में रूप में नहीं समझता था। उस समय माना जाता था कि मानसून का आगमन भगवान सूर्य के दक्षिणार्थ में जाने की वजह से होता है, क्योंकि तब उत्तरार्ध में नमी का मौसम शुरू हो जाता है और बारिशें होती हैं।

इसी बात को अगर आगे बढ़ाया जाए तो हमें फ्रांसिस ज़िमरमैन के लेख से यह भी जानकारी मिलती है कि क्लासिकल युग में खगोलशास्त्रियों के अनुसार मानसून की भी एक अपनी जन्मपत्री होती थी। इसमें शुरुआती छह महीनों का समय गर्भावस्था का माना जाता है और गर्भधारण के समय नक्षत्रों की स्थिति की गणना के अनुसार मानसून के भावी जीवन का अनुमान लगाया जाता था।[7] आने वाले साल में मानसून के स्वरूप के अनुसार ही कृषि की स्थिति का भी आकलन किया जाता था और ज़रूरत के अनुसार किसानों द्वारा ज़रूरी क़दम उठाए जाते थे। मानसून की तुलना जीवित वस्तु से करते हुए उसके जीवन-चक्र को समझने की यह कोशिश अपने आप में इस बात की द्योतक रही है कि तत्कालीन समाज मानसून को उसकी अनिश्चितताओं के संदर्भ में समझते हुए स्वीकार करता था। मानसून से जुड़ी अनिश्चितताओं की समझ किसान को कृषि संबंधी कार्यों में काफ़ी लचीला बना देती थी। समाज में व्याप्त इस लचीलेपन की व्याख्या मैं बाद में फिर से करूँगा। फ़िलहाल एक

---

[4] पी.सी.डी. मिल्ली व अन्य (2008) : 573-74.

[5] अर्जदास्त, भादवा सुदी छह संवत् 1774; आषाढ़ बदी, एक, हिस्टोरिकल सेक्शन, जयपुर रिकार्ड, राजस्थान स्टेट ऑर्काइव्ज़, बीकानेर.

[6] अर्जदास्त, भादवा बदी सात संवत् 1774, हिस्टोरिकल सेक्शन, जयपुर रिकार्ड, राजस्थान स्टेट ऑर्काइव्ज़, बीकानेर.

[7] फ्रांसिस ज़िमरमैन (1987) : 51-76.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 605

निगाह इस पहलू पर डालना ज़रूरी है कि आगामी मानसून का स्वरूप समझने के लिए तत्कालीन समाज किस प्रकार से प्रकृति और उसके ढेरों तत्त्वों की गतिविधियों की व्याख्या करता था।

पंचांग की परम्परा को जब समाज ने लोक कहावतों के माध्यम से मानसून का स्वरूप समझने के लिए इस्तेमाल किया तो कुछ इस तरीक़े की बातें कीं जिनके तहत ग्रहों और उनकी गति, नक्षत्रों में उनकी स्थिति आदि के आधार पर मानसून का पूर्वानुमान लगाया गया। ऐसा माना जाता था कि अगर मानसून के महीने में आसमान नीला नज़र आता है तो अच्छी बारिश होगी, वहीं अगर चैत के महीने में बिजली नहीं चमकती है तो बारिश की शुरुआत बैशाख में ही हो जाएगी, और अगर बरसाती मौसम में सुबह इंद्रधनुष नज़र आता है और शाम को सूर्य की किरणें लाल नज़र आती है तो बाढ़ आने की सम्भावना है।[8]

ऐसा भी माना जाता था कि आषाढ़ के महीने में चंद्रमा के दर्शन सोमवार, बृहस्पतिवार, या शुक्रवार को होते हैं तो बारिश होगी। वैसे ही अगर सावन के महीने के दूसरे दिन चंद्रमा की चमक कम है और आषाढ़ में चाँद चमकता रहा है तो यह शुभ लक्षण है। लेकिन अगर इन महीनों में चंद्रमा सूर्य के पहले उग आया हो तो यह अशुभ है और सूखा पड़ने के लक्षण हैं।

चिड़ीज नहावे धूळ में, मेहा आवणहार।
जळ में नहाबै चड़कली, मेह विदा तिण बार।।
बग पंखां पौय, उझकि चोंच पवनां भखे।।
तीतर गूँगा थाय, इंद्र धड़ूके माघजी।।
टीळै मिलकी कांबळी, आय थळां बैठंत।
दिन चौथे कैपाँचवैं जल थळ ठेळ भरंत।।
पपैयो पिउ पिउ करै, मोराँ धणी अजग्ग।
छत्रा करै मोरयो सिरै, नदियाँ बहै अथग्ग।।
अत तरणावैं तीतरी, लक्खारी कुरळेह।
सारस गिरी- शृंगन भ्रमें, जद अत जोरे मेह।।[9]

(पक्षी जब धूल में खेलते दिखें तो यह माना जाता था कि बारिश आएगी। छोटे पक्षी पानी में खेलते हैं तो समझो कि बारिश ख़त्म हो गयी है। बगुला अपनी चोंच के माध्यम से साँस ले रहा है, अपने पंख फैला रहा है, तीतर ज़मीन पर बैठे हैं, चुप हैं, पपीहा, मोर, रोना शुरू कर दे और सारस आदि ऊँची उड़ान और नृत्य शुरू कर दें तो यह भारी वर्षा का समय है।)

बिजनस पवन सूरियो बाजे। घड़ी पलक महिं मेह गाजे।।
पवन गिरी छुटै परवाई। धर गिर छोलैं इंद्र धपाइ।।
सवार रो गाजियो, ऐळो नहीं जाय। प्रात:काल बादल का गरजना वृथ नहीं जाता।।
बादळ रहे रात रा बासी। तो जाणों चोकस मेह आसी।।
सुकरवार री चादरी, रही सनीचर छाय। ढंक कहै हे भड्डुळी, बरस्याँ बिना न जाय।।
अम्मर राच्यो, मे माच्यो। तारा अत तग-तग करे, अम्बर नीला हून्त।।
पढ़े परळ पाणी तणी, जद संजया पूलंत। अस्भर पीळो, मे सीळो।।
चैत महीने बीच लुकोवे। धुर बैशाखँ के सू धेवे।।
उगंते रो माछली, आंधवते रो मोख।। डंक कहे है भड्डुली, नदियाँ चढ़सी गोख।।
आँधी साथै मेह आया ही करै। आँधी रांड मेहां रो पाळी रैवै।।[10]

---

[8] कन्हैयालाल सहल (1956) : 8-18 .
[9] शंकर जय शंकर देव (1956) : 81-83.
[10] कन्हैयालाल सहल, वही : 8-18 .

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 606

(हवा उत्तर-पश्चिम से बह रही है, तो बरसात होगी। पूर्व से हवा चल रही तो भारी बरसात होगी। सुबह बादल ग़रज़े तो बारिश होगी। पिछली रात से बादल छाये हैं, तो बरसात ज़्यादा होगी। बादल शुक्रवार को दिखाई देते हैं और शनिवार को भी जारी रहते हैं, तो निश्चित रूप से बारिश होगी। शाम आकाश लाल हो, तो सुबह बरसात होगी। मानसून के मौसम के दौरान आकाश नीला है तो वर्षा होगी। आकाश पीला है, तो बारिश धीमी हो जाएगी। चैत्र के महीने के दौरान बिजली नहीं चमकती है, तो बारिश बैसाख के महीने में शुरू होगी। इंद्रधनुष सुबह दिख रहा है और शाम को आकाश लाल है, यह बाढ़ की निशानी है। बारिश धूल के तूफ़ान के साथ आती है तो बारिश कम होती है।)

आम सूजै साँढ़णी, दौड़ै थळाँ अपार।
पग पटकै वैसे नहीं, जद मेह आवणहार।।
सावण काछा झाग सुण, गाडर हंदा हंत।
दौड़े सनमुख पवन दिस, जळ थळ ठेल भरन्त।।
माँडे राड साँप री मासी।
तो जाणी चोकस मेह आसी।।[11]
(ऊँटनी चारों ओर दौड़े पैरों को फेंके , भेड़ मुँह से झाग निकाले और हवा की दिशा में दौड़े इसका मतलब है भारी बारिश होगी।)

कुंदन जमै नं जड़ाव प, जमसलायन कीट। कहे जढ़िया सुणजो जगत, उड़े मेह की रीठ।
धेब्याँ धेखो मिट गयो, मन में हुबो हुलास। देख सूदणी बजबजी, मेह आबण की आस।।
कोरा कपड़ा सूदणी, जद अत गर्मी होय। सूछम कीड़ा सूक्ष्णी, मेहा मुक्ता जोय।।
बणकर के री पांजनी, सूखे नहीं सताब। आबादानी मेह की, लाल रंग वहै आभ।।
देख खुरड़ कहे ढेढ की, कथा टूटे नेह। ल्हेई चढ़े न चामड़े, मुक्ता बरसे मेह।।
ढोल दमामा दुड़बड़ी, बोरे सादर बाज। कहे डोम दिन तीन में, इंद्र करै आवाज।।
बिगड़े धिरत बिलोवणो, नारी होय उदास। जद असवारी मेह की, रहें छास की छास।।[12]
(मणि आभूषणों पर नहीं चिपके, लकड़ी में दीमक लग जाए, मतलब भारी बारिश होने वाली है। कपड़े कलफ़ नहीं हो पाये, गीले कपड़े छोटे कीड़ों से संक्रमित हों, तो भारी बारिश होने वाली है। गरम कपड़ों की आब बरक़रार नहीं रहती, और चमड़ा चिपकता नहीं है और इसी प्रकार ढोल, ताशा आदि संगीत वाद्ययंत्र उचित ध्वनि नहीं देते तो भारी बारिश होने वाली है।)

मानसून को समझने की अपनी कोशिशों में लगा तत्कालीन समाज सिर्फ़ भाग्य के भरोसे ही नहीं बैठने वाला था, बल्कि मानसून में होने वाली बारिश को सँजो कर रखने की तरक़ीबें सोचने लगा था। तत्कालीन समाज द्वारा विकसित की गयी कुछ व्यवस्थाओं की चर्चा करने से पहले ये ज़रूरी है कि हम मानसून की प्रकृति और स्वभाव पर भी कुछ बातें कर लें।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय सभ्यता मानसूनजनित सभ्यता है। भारतीय उपमहाद्धीप के उत्तरी भाग में हिमालय पर्वत से निकलने वाली व साल भर बहने वाली उत्तर भारत की नदियों ने सभ्यता के लिए ज़रूरी कृषि के लिए आवश्यक सिंचाई मुहैया करायी। ग़ौरतलब है कि इन नदियों में पानी की उपलब्धता मानसून की बारिश से भी प्रभावित होती रही है। बारिश के मौसम में आने वाले सैलाब ने नदी के इधर-उधर एक बड़े हिस्से को कृषि योग्य उपजाऊ भूमि उपलब्ध

---

[11] शंकर जय शंकर देव, वही : 81-83.
[12] कन्हैयालाल सहल, वही : 8-18.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 607

करवायी। इसके अलावा जिन इलाक़ों में बारहमासी नदियाँ नहीं थीं, ख़ासकर वे जो हिम के पिघलने से अपना प्रवाह जीवित रखती थीं, वहाँ मानसून के दौरान बनने वाली बरसाती नदियों ने कृषि के विकास में अहम भूमिका निभायी। जब हम राजस्थान की बात करते हैं तो ये चिह्नित करना ज़रूरी है कि इसके दक्षिणी-पूर्वी भाग में तो फिर भी एक-आध बड़ी नदियाँ दिखती हैं— जैसे चम्बल, जो क़रीब-क़रीब बारहमासी है, और जिसे अरावली की पर्वत-शृंखलाओं से पानी मिलता रहता है। पर यही पर्वत शृंखलाएँ बदक़िस्मती से उत्तर-पूर्व से आने वाली बारिश से भरी मानसूनी हवाओं को राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में जाने से रोक देती हैं। यहाँ यह कह देना भी ज़रूरी है कि उत्तर-पश्चिम का यह इलाक़ा खारे पानी की चार बड़ी झीलों के लिए भी मशहूर है : साँभर, डीडवाना, पंचभद्रा और लूणकरनसर। इस इलाक़े में खारे पानी की झीलों की बहुलता इस बात की तरफ़ इशारा करती है कि यहाँ का भूगर्भीय पानी आमतौर पर खारा है। न केवल आमतौर पर पानी खारा है, बल्कि काफ़ी गहराई पर ही मिलता है। जैसे-जैसे हम अरावली से उत्तर-पश्चिम की तरफ़ बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे मिट्टी के मैदानों की जगह रेत के टीले नज़र आने लगते हैं। यह इस बात का भी द्योतक है कि इस इलाक़े में पानी की कमी काफ़ी लम्बे समय से रही है या इस इलाक़े ने कभी उस पानी की बहुतायत ही नहीं देखी जो रेत के कणों को आपस में बाँध कर मिट्टी के निर्माण में सहायक होते हैं।[13] थार रेगिस्तान का यह इलाक़ा पानी की कमी की वजह से वैसे तो काफ़ी निर्जन रहा है, परंतु मानव-समाज ने यहाँ भी जीवन की सम्भावनाओं को तलाशने की कोशिश में पशुपालन के साथ कृषि को भी सम्भव कर दिखाया था। थोड़ा और पश्चिम में जाने पर हमें सिंधु नदी और उसके आस-पास विकसित कृषि सभ्यताओं के चिह्न मिलते हैं, परंतु मैं यहाँ अपनी बात मुख्यतः बीकानेर, जैसलमेर, चूरू, शेखावटी और बाड़मेर के संदर्भ में करूँगा, और कभी-कभार दक्षिण-पूर्व जैसे जोधपुर और आमेर से भी कुछ उदाहरण देता चलूँगा।

जलवायु-परिवर्तनशीलता एक ऐतिहासिक सत्य है। प्राचीनतम काल से जलवायु में परिवर्तन होते रहे हैं। कुछ जलवायु-परिवर्तन मानव-सभ्यता के विकास में सहायक रहे हैं और कुछ उसके पतन के कारक बने हैं।[14] आमतौर पर जलवायु की परिवर्तनशीलता को दो स्तरों पर देखा जाता है— एक तो निरंतर चलते रहने वाले परिवर्तन, जैसे कि मौसमों का आना और जाना; और दूसरा, ज़्यादा लम्बे समय तक चलने वाले परिवर्तन।[15] दूसरे तरह के परिवर्तन आमतौर पर जलवायु के स्वभाव में स्थायी परिवर्तन की वजह भी बन जाते हैं। पहले स्तर के निरंतर चलने वाले परिवर्तनों से सामंजस्य बनाने की मानवीय प्रयासों की एक झलक हम ऊपर के पृष्ठों में देख चुके हैं।[16] अब मैं दूरगामी परिवर्तनों से सामंजस्य बनाने की मानवीय प्रयासों की चर्चा करना चाहूँगा।

प्राचीन काल में हमें इस इलाक़े में सभ्यता के अवशेष उत्तर में कालीबंगा, रंगमहल में या फिर अरावली और उसके आस-पास के इलाक़े में देखने को मिलते है।[17] मौसम-वैज्ञानिकों ने इस बात की पुष्टि की है कि छठी शताब्दी से नवीं-दसवीं शताब्दी तक का काल भारतीय महाद्वीप में शुष्कता का रहा है।[18] छठी शताब्दी के आसपास से ही हमें रंगमहल संस्कृति का पतन भी नज़र आता है। सिंधु घाटी की सभ्यता की तरह रंगमहल भी नदी-घाटी संस्कृति थी। रंगमहल कालीबंगा से थोड़ा दक्षिण में घग्गर से सिंचित संस्कृति रही है।[19] घनश्याम लाल देवड़ा ने अपने महत्त्वपूर्ण शोधों से यह

---

[13] डेविड आर. मोंटगोमरी (2007).
[14] टी.के. राजलक्ष्मी (2002).
[15] बी एम. फ़गान (2008).
[16] दीप नारायण पांडेय, अनिल के. गुप्ता और डेविड एम. ऐण्डरसन (2003) : 46-59.
[17] दशरथ शर्मा (1966), *राजस्थान थ्रू दि एजेज़*, राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज़, बीकानेर.
[18] आर.के. यादव (2009) : 117-33.
[19] मेजर सर्जन सी.एफ़. ऑलडम (1893) : 49-76.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 608

बात भी स्थापित की है कि रंगमहल के उत्तर में भटिंडा के इलाक़े में घग्गर और उसके सहायक नदियों से सिंचित एक काफ़ी बड़ा इलाक़ा लाखी जंगल के नाम से जाना जाता था,[20] जो तेरहवीं शताब्दी आते-आते विलुप्त हो गया। पुरातात्विक साक्ष्यों और ऐतिहासिक अभिलेखीय स्रोतों पर एक नज़र डालें तो राजस्थान का समाज इस शुष्कता के दौर में मानसून से एक अनूठा सामंजस्य बनाता नज़र आता है।

सतही तौर पर देखें तो ये आश्चर्यजनक लगता है कि रंगमहल संस्कृति के पतन के आसपास जब शुष्कता बढ़ रही थी, उसी समय सघन रेगिस्तान में हमें सभ्यता के विकास के चिह्न मिलने लगते हैं। मानव-समाज नदी घाटी के किनारे छोड़ कर रेगिस्तान के अंदरूनी भागों में जा कर बसने लगता है। नदियों के किनारों को छोड़ने की एक वजह शायद नदियों के प्रवाह में आने वाले अवांछनीय परिवर्तनों को माना जा सकता है।[21] इसकी और भी कुछ वजहें हो सकती हैं। यहाँ पर इन वजहों में न जाकर इस बात पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि इस प्रवृत्ति को समझने से हमें मनुष्य और मानसून के सामंजस्य की एक अनूठी मिसाल उजागर होती है।

रेगिस्तान के अंदरूनी इलाक़ों में मानसून से होने वाली बारिश ही जल का एकमात्र स्रोत मानी जा सकती है। हम ऊपर कह ही चुके हैं इस इलाक़े में एक तो भूगर्भीय पानी काफ़ी गहराई में मिलता है और दूसरा आमतौर पर खारा होता है। यह बात भी जानना ज़रूरी है कि रेगिस्तान के इस इलाक़े में साल भर में होने वाले मानसून की बारिश की औसत मात्रा पर छह से आठ इंच तक ही होती है। इतनी कम बारिश में, जो मानसून के तीन महीनों में ही सिमट कर रह जाती है, से मानव-समाज साल भर तक जीवनयापन कैसे करता होगा? पूजा नागरथ ने अरिज़ोना और थार रेगिस्तानों की तुलना करते समय गणना की है कि चार इंच बारिश को अगर एक वर्ग फुट ज़मीन पर जमा करें तो क़रीब-क़रीब 2.5 गैलन पानी जमा किया जा सकता है। अगर लीटर में नापें तो नौ लीटर से ज़्यादा पानी इकठ्ठा किया जा सकता है।[22] मानव-समाज ने मानसूनी बारिश में छुपी इस सम्भावना को फलीभूत करने का तरीक़ा ढूँढ़ निकाला और इस तरीक़े ने मानसून से वह सामंजस्य स्थापित कर दिया जिसने नवीं-दसवीं शताब्दी से आज तक रेगिस्तान के अंदरूनी इलाक़ों में सभ्यता की निरंतरता स्थापित कर दी। देखने में भले ही आसान लगे, पर यह कार्य उससे कहीं ज़्यादा मुश्किल था। ख़ासकर रेगिस्तान के रेतीले मैदानों में जहाँ रेत पानी सोख लेने के लिए निरंतर तैयार रहती है। रेत में तालाब बनाना या कुआँ खोदना लगभग असम्भव सा काम रहा है। मनुष्य ने तालाब बना कर सिंचाई करने के लिए अगर खड़ीन का विकास किया, तो कुएँ खोदने के लिए रस्सी से बाँधे गये दिन में मात्र दो बालटी पानी देने वाली कुँई का निर्माण भी किया।[23]

राजस्थान के समाज ने बारिश की कम मात्रा में निहित सम्भावनाओं को फलीभूत करने के लिए खड़ीन जैसी जल-संचय व्यवस्था खोज निकाली। जैसा कि ऊपर बता चुके हैं कि राजस्थान के इस इलाक़े में बारिश मानसून के तीन महीनों में ही होती थी और वह भी आठ-दस इंच तक। तत्कालीन समाज ने इस बात पर ग़ौर किया कि जिस इलाक़े में छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं वहाँ पर बारिश का पानी अक्सर बरसाती नाले के रूप में किसी गड्ढे में जमा हो जाता था या फिर रेत में विलीन हो जाता था। समाज ने यह भी देखा कि इन बरसाती नालों में मृदा के छोटे-छोटे कण साद के रूप में भी बहते थे, किनारों पर भी जमा होते थे और आमतौर पर समतली भूमि पर निचली परत के रूप में इकट्ठे

---

[20] जी.एस.एल. देवड़ा (1999) : 97-107; जी.एस.एल. देवड़ा (2010).

[21] एम.के .धवालिकर (1992); जी.एस.एल.देवड़ा (1999) : 371-82.

[22] पूजा नागरथ (2008).

[23] अनुपम मिश्र, वही.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 609

हो जाते थे। इस तरह से रेतीली भूमि में कृषि योग्य मिट्टी के मैदानों का निर्माण हो रहा था। प्रकृति की इस प्रवृत्ति को मानव-समाज ने एक नये रूप से संचालित करने की कोशिश की। बरसाती नालों के रास्ते में जहाँ भी खुली समतल ज़मीन मिलती थी, वहाँ पर लोगों ने छोटे-छोटे बाँध बनाने शुरू कर दिये। इन बाँधों की ऊँचाई सिर्फ़ इतनी रखी जाती थी कि पानी बहुत अधिक मात्रा में जमा न हो। साथ ही साथ अतिरिक्त जल इस बाँध से आगे निकल जाता था और इस आगे बढ़ते जल को एक और छोटे बाँध के सहारे रोक लिया जाता था। ज़रूरत पड़ने पर इसी क्रम में और भी बाँध बनाए जा सकते थे, अर्थात् पहाड़ियों को कैचमेंट के रूप में देखा गया और इस बहते हुए जल को संग्रहीत कर दिया गया।[24]

ग़ौरतलब है कि बाँधों की ऊँचाई कम रखने की एक तकनीकी वजह थी। रेगिस्तान के इस भाग में समाज केवल जल-संचय से ही संतुष्ट नहीं हो सकता था, बल्कि उसके लिए ज़रूरी था कि वह इस इलाक़े में कृषि के विकास को बढ़ावा दे सके। बरसाती नालों में बह कर आने वाली साद इन बाँधों से टकरा कर मिट्टी के मैदानों को जन्म देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। दूसरा, यह ज़रूरी था कि इन मिट्टी के मैदानों में इतना पानी न इकट्ठा हो जाए कि तालाब तो बन जाए परंतु कृषि के लिए मिट्टी के मैदान का निर्माण न हो पाए। बाँध की कम ऊँचाई यह सुनिश्चित करने में गहरी भूमिका निभाती थी। कोशिश यह होती थी कि तालाब का पानी चार-पाँच महीने में सूख जाए और नमी भरी तलहटी कृषि के लिए अनुकूल ज़मीन उपलब्ध करा दे। इस तलहटी पर आमतौर पर रबी की फ़सलें उगाई जा सकती थीं। गेहूँ इनमें प्रमुख पैदावार के रूप में नज़र आता है। तालाब की इस नम तलहटी में बाद में कुएँ खोद कर पानी भी निकाला जाता था।[25]

ऐतिहासिक तौर पर ऐसा माना जाता है कि जैसलमेर के इलाक़े में पालीवाल ब्राह्मणों ने इस तकनीक का सफलतापूर्वक विकास किया और नवीं-दसवीं शताब्दी से इस इलाक़े में सभ्यता की निरंतरता देखने में आयी।[26] पालीवाल ब्राह्मणों की भूमिका की चर्चा करने से पहले यह बता देना ज़रूरी है कि ऐसी ही पद्धति हमें बलूचिस्तान में गबरबंद के रूप में देखने को मिलती है। मैंने अपने एक लेख में इस पद्धति पर भूमध्यसागरीय सभ्यता के प्रभाव के रूप में भी देखने की कोशिश की है।[27]

पालीवाल ब्राह्मणों का मूल निवास पाली है। अगर हम इसकी भौगोलिक तौर पर विवेचना करें तो यह समझ में आता है कि अरावली की तलहटी में स्थित होने के कारण यहाँ भी बरसाती नालों की बहुलता है। मुंहता नैणसी ने अपनी प्रशासनिक पुस्तिका *मारवाड़ परगना री विगत* में इस इलाक़े में इन बरसाती नालों को बहलो, रेला, उनाव आदि नामों से दर्शाया है।[28] अर्थात् पाली का समाज बरसाती नालों में निहित सिंचाई की सम्भावनाओं से परिचित था और उसका उपयोग भी कर रहा था। मेरा ऐसा मानना है कि इस इलाक़े के भूगोल विशेष के कारण यहाँ के निवासियों को बरसाती नालों से विकसित की जा सकने वाली कृषि की सम्भावनाओं की जानकारी थी। पाली के रहने वाले पालीवाल ब्राह्मणों ने प्रकृति संबंधी अपनी इसी समझ को जैसलमेर के रेतीले इलाक़े में चरितार्थ कर दिखाया। एक सूखे रेगिस्तान में न केवल जल-संचय किया बल्कि कृषि का विकास करके सभ्यता को स्थायित्व भी प्रदान किया। जल-संचय की इस व्यवस्था की परम्परा का एक और विश्लेषण किया जा सकता है।

---

[24] अनुपम मिश्र, वही; मुंहता नैणसी (1673/1968-74).

[25] मयंक कुमार (2013), वही; मुंहता नैणसी, वही, भाग 2 : 21.

[26] एस. अली. नदीम रिज़वी (1995) : 312-38.

[27] मयंक कुमार (2014) : 57-86.

[28] स्पूनर ब्रेन (1988).

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 610

जोहड़ (गोमाड़ीपुरा, चूरू)

जिस इलाक़े में छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं वहाँ पर बारिश का पानी अक्सर बरसाती नाले के रूप में किसी गड्ढे में जमा हो जाता था या फिर रेत में विलीन हो जाता था। ... रेतीली भूमि में कृषि योग्य मिट्टी के मैदानों का निर्माण हो रहा था। प्रकृति की इस प्रवृत्ति को मानव-समाज ने एक नये रूप से संचालित करने की कोशिश की। बरसाती नालों के रास्ते में जहाँ भी खुली समतल ज़मीन मिलती थी, वहाँ पर लोगों ने छोटे-छोटे बाँध बनाने शुरू कर दिये।

पौराणिक कथाओं में ऐसा माना जाता रहा है कि यदुवंशी मथुरा का इलाक़ा छोड़ कर पश्चिम में द्वारका की ओर बस गये थे। ऐसा भी माना जाता है कि इन्हीं में से कुछ समूह उत्तर-पश्चिम होते हुए ईरान की तरफ़ गये थे। जैसलमेर का भाटी राजवंश अपने को यदुवंशी मानता है और इसे मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता है। *जैसलमेर री ख्यात* के अध्ययन से यह बात उजागर होती है कि भाटी राजवंश उत्तर पश्चिम से लेकर पंजाब में भटिण्डा तक राज्य करता था और बाद में इसी राजवंश ने लाखी जंगल के इलाक़े से पलायन करके पहले लोदरवा और बाद में जैसलमेर में अपना राज्य स्थापित किया। अत: यह कहना ग़लत नहीं होगा कि शायद यह क़बीला ईरान और बलूचिस्तान में पहले से विकसित कम ऊँचाई वाले बाँधों की इन प्राकृतिक परिस्थितियों में उपयोगिता से परिचित था और इसे ही इन्होंने जैसलमेर के समीपवर्ती छोटी पहाड़ी वाले इलाक़ों में प्रवर्तित किया।[29]

राजस्थान के रेगिस्तानी इलाक़े में पानी-संचय की एक और व्यवस्था देखने को मिलती है, जो प्रकृति से सामंजस्य का अनूठा उदाहरण है। चूरू के इलाक़े में रेतीली टीलों की वजह से मानसूनी जलबहाव तो काफ़ी बनता था परंतु ज़मीन के रेतीले होने की वजह से पानी का संचय सम्भव नहीं था। दूसरी तरफ़ जैसलमेर की तरह छोटी पहाड़ियों की अनुपस्थिति साद के निर्माण में बाधक थी। इसकी वजह से भी रेतीले कणों से मिट्टी का निर्माण सम्भव नहीं था। इस परेशानी के मद्देनज़र इस इलाक़ों में कुएँ खोदना भी आसान काम नहीं था। इन प्राकृतिक परिस्थितियों की वजह से समाज ने

[29] *जैसलमेर री खयात, परम्परा,* नारायण सिंह माही (सम्पा.), भाग- 57-58, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 611

जोहड़ (शिवबाड़ी, बीकानेर)

मानव-समाज ने पानी की कमी के सच को स्वीकारा और प्रकृति प्रदत्त सम्भावनाओं को समझकर जल-संचय के माध्यम से न केवल सिंचाई की व्यवस्था की बल्कि कृषि योग्य भूमि का भी निर्माण किया। जल-संचय की हरसम्भव सम्भावना को पहचान कर एक नयी तकनीक के माध्यम से मानव-समाज के लिए उपयोगी बनाया।

इस इलाक़े में जोहड़ सरीखी पानी-संचय की अनूठी व्यवस्था विकसित की। मानसूनी जल प्रवाह के रास्ते में जहाँ पर पानी को इकट्ठा करने की सबसे ज़्यादा गुंजाइश नज़र आती थी, वहाँ पर एक पक्की तलहटी का जलाशय बनाया गया। तालाबों के विपरीत इस जलाशय का तल पक्का रखा गया था, ताकि पानी रेत में जाकर विलीन न हो जाए। (ग़ौरतलब है कि इस इलाक़े में भी बारिश मानसून के तीन महीनों में ही होती है और उसकी मात्रा भी आठ से दस इंच के बीच में ही रहती है)। जल-संचय की इस व्यवस्था की थोड़ी और व्याख्या करना ज़रूरी है। रेत के टीलों से होने वाले मानसूनी जल-बहाव की दिशा का अध्ययन करने के बाद प्रवाह के रास्ते में पक्का ढलाव बनाया जाता था। ये ढलाव एक पक्के तल वाले चौकोर जलाशय में खुलता था। यह जलाशय सामान्य सतह से कुछ नीचे होता था और ढलाव वाली दिशा को छोड़ कर बाक़ी दिशाओं में सीढ़ियों से निर्मित होता था। ये सारी सीढ़ियाँ और चारों तरफ़ की दीवारें पक्की बनाई जाती थीं। इन पर जलरोधक प्लास्टर की एक परत भी चढ़ाई जाती थी ताकि तलहटी या किनारों से पानी का रिसाव न हो। इन दीवारों में भी सतह के स्तर पर बड़े-बड़े छेद होते थे जिससे जहाँ तक हो सके आसपास के पानी को जलाशय के आगोर में इकट्ठा किया जा सके। जलाशय में आते ढलाव में दीवार से कुछ पहले एक छोटी सी ओट बना दी जाती थी जिससे कि जलबहाव के संग आती रेत को जलाशय में आने से रोका जा सके। ढलाव जहाँ पर जलाशय की दीवार से मिलता था वहाँ पर थोड़ी ऊँचाई पर कुछ छेद कर दिये जाते थे, जिनके माध्यम से साफ़ पानी जलाशय में पहुँच जाता था।

यह भी देखने में आता है कि कहीं-कहीं पर ये ढलाव बिना किसी रोकटोक के जलाशय में

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 612

जोहड़ (कालू, चूरू)

समाज ने इस इलाक़े में जोहड़ सरीखी पानी-संचय की अनूठी व्यवस्था विकसित की। मानसूनी जल प्रवाह के रास्ते में जहाँ पर पानी को इकट्ठा करने की सबसे ज़्यादा गुंजाइश नज़र आती थी, वहाँ पर एक पक्की तलहटी का जलाशय बनाया गया। तालाबों के विपरीत इस जलाशय का तल पक्का रखा गया था, ताकि पानी रेत में जाकर विलीन न हो जाए।

मिल जाते थे (गोसांईंपुरा के जोहड़ का चित्र))। स्थानीय लोगों का मानना रहा है कि इस ढलाव के माध्यम से पशु भी जलाशय के पानी तक पहुँच सकते थे (शिवबाड़ी, बीकानेर का चित्र)। अगर हम कालू के जोहड़ पर नज़र डालें तो यह बात साफ़ हो जाती है कि जनमानस ने जोहड़ के लिए जगह का चुनाव बहुत सोच समझ कर किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि कालू के जोहड़ का डूब-क्षेत्र काफ़ी बड़ा रहा होगा (कालू, चूरू के जोहड़ का चित्र)।

जोहड़ पर अपनी बात ख़त्म करने के पहले दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करना ज़रूरी लगता है। सर्वप्रथम तो यह कि फ़तेहपुर के जोहड़ के मध्य में बने सीढ़ीदार स्तम्भ का क्या औचित्य रहा होगा। (फ़तेहपुर-लक्ष्मणगढ़ जोहड़ का चित्र) इस बात का जवाब अगर फ़तेहपुर शहर में बने जोहड़ से जोड़ कर देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह जोहड़ किसी धार्मिक अनुष्ठान अथवा विलास के लिए बनाया गया था (फतेहपुर शहर के जोहड़ का चित्र)। किसी भी क़िस्म की लिखित स्रोत की अनुपस्थिति में इस सम्भावना को और व्याख्यायित करना लगभग असम्भव है। दूसरा सवाल इन जोहड़ों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले प्लास्टर की जलरोधक गुणवत्ता से जुड़ा हुआ है। राजस्थान के रेगिस्तानी इलाक़ों में सीढ़ीदार कुओं की बहुतायत देखने को मिलती है। परंतु यह बात ध्यान देने की है कि इनके निर्माण में सतह पर प्लास्टर की परत नज़र नहीं आती। पत्थरों को चिकना कर के इस तरह संयोजित किया जाता था कि सीढ़ियों का निर्माण हो सके। इन सीढ़ियों से जल रिसाव की सम्भावना इसलिए भी कम होती थी कि इन पर पानी इकट्ठा नहीं किया जाता था। पानी तो कुएँ के अंदर से प्राप्त किया जाता था। कुछ इतिहासकार यह सुझाव भी रखते हैं कि इस तरह प्लास्टर की

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 613

जोहड़ (शहर फ़तेहपुर)

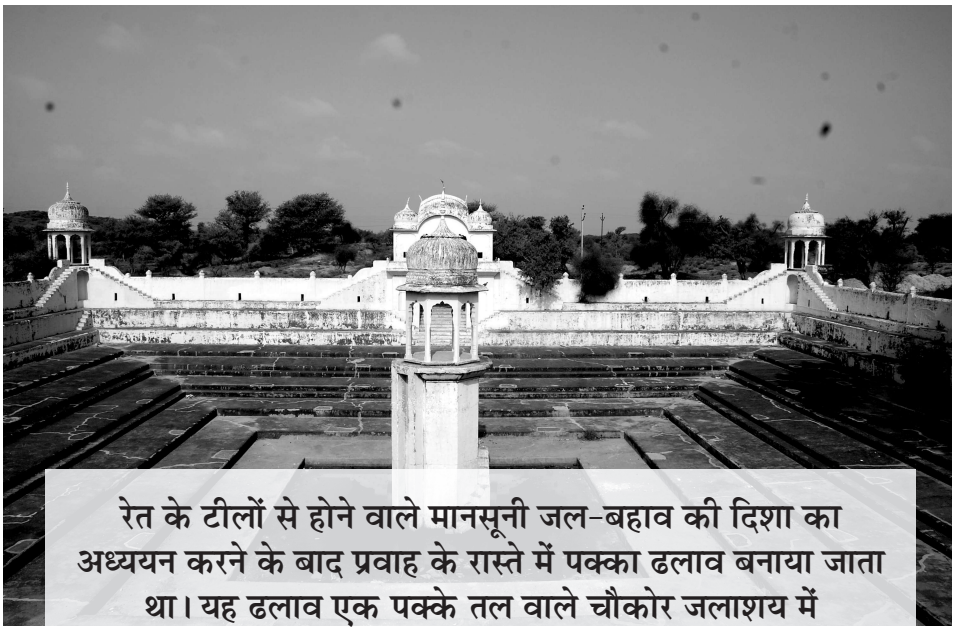

रेत के टीलों से होने वाले मानसूनी जल-बहाव की दिशा का अध्ययन करने के बाद प्रवाह के रास्ते में पक्का ढलाव बनाया जाता था। यह ढलाव एक पक्के तल वाले चौकोर जलाशय में खुलता था। यह जलाशय सामान्य सतह से कुछ नीचे होता था और ढलाव वाली दिशा को छोड़ कर बाक़ी दिशाओं में सीढ़ियों से निर्मित होता था।

शुरुआत तुर्कों के आगमन के साथ ही देखने को मिलती है।[30] यहाँ यह कह देना भी ज़रूरी है कि परिस्थिति की वजह से ही शायद परंतु जोहड़ों की उपलब्धता मुगल काल से ही देखने को मिलती है। इस विषय पर आगे और शोध की ज़रूरत है।

उपरोक्त वर्णन और विवेचना से यह बात साफ़ हो जाती है कि राजस्थान में समाज जहाँ एक तरफ़ पानी की कमी से सामंजस्य बनाता नज़र आता है तो वहीं दूसरी तरफ़ मानसूनी बारिश की अनिश्चितताओं से भी निपटने को तैयार नज़र आता है। मानव-समाज ने पानी की कमी के सच को स्वीकारा और प्रकृति प्रदत्त सम्भावनाओं को समझकर जल-संचय के माध्यम से न केवल सिंचाई की व्यवस्था की बल्कि कृषि योग्य भूमि का भी निर्माण किया। जल-संचय की हरसम्भव सम्भावना को पहचान कर एक नयी तकनीक के माध्यम से मानव-समाज के लिए उपयोगी बनाया।

इस लेख में मानसून की अनिश्चितता से निपटने के लिए कृषि के लिए किये जाने वाले बदलावों की चर्चा नहीं की गयी है। परंतु मानव-समाज की कृषि संबंधी सामंजस्य बनाने की प्रवृत्ति के उदाहरण मेरी बात को बल प्रदान करते हैं। संवत् 1774 में भादवा बदी सात को वकील कंवरचंद और साहिबराम आमेर राज्य को सूचित करते हुए कहते हैं कि देर से बारिश आने की वजह से इस बार किसान सिर्फ़ मोठ की ही बुआई कर पाएँगे।[31] दूसरे स्तर पर किसानों द्वारा इस इलाक़े में मिश्रित फ़सल (इंटरक्रॉपिंग) का चलन प्रकृति से सामंजस्य बनाने का एक और उदाहरण दर्शाता है। किसान रबी या ख़रीफ़ के

[30] इरफ़ान हबीब (1985); जूलिया हेगेबाल्द (2009) : 78-89; मोरना लिविंगस्टोन (2002).

[31] अर्जदास्त, भादवा बदी सात संवत् 1774, हिस्टोरिकल सेक्शन, जयपुर रिकार्ड, राजस्थान स्टेट ऑर्काइव्ज़ बीकानेर.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 614

दौरान अलग-अलग समय पर तैयार होने वाली फ़सलों को एक साथ अपने खेत में बोता था। अगर बारिश सही समय पर और सही मात्रा में हो जाती थी तो किसान को दोनों फ़सलों का फ़ायदा मिलता था। परंतु अगर किसी वजह से शुरू में बारिश हुई और बाद में बारिश नहीं हुई तो कम से कम पहले तैयार हो जाने वाली फ़सल किसान को मिल जाती थी। (उपरोक्त विवेचन मानसून से सामंजस्य बनाते समाज की एक झलक मात्र ही प्रस्तुत करता है।) [32]

यह चर्चा अधूरी रह जाएगी अगर हम मानसून से सामंजस्य बनाने की एक विशिष्ट प्रवृत्ति को चिह्नित न करें। पानी की कमी और मानसून की अनिश्चितता की वजह से समाज ने पशुपालन से भी अपना नाता बनाए रखा था। अर्थात् किसी वजह से अगर कृषि-उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था तो समाज के पास पशुधन बतौर विकल्प मौजूद रहता था। पशुपालक प्रवृत्ति होने के कारण यह समाज गतिशील भी था— विपरीत पर्यावरणीय परिस्थितियों में बेहतर इलाक़े की तरफ़ पलायन करना प्रकृति से सामंजस्य बनाए रख पाने में काफ़ी महत्त्वपूर्ण साबित होता था।[33] आज भी राजस्थान के रेगिस्तानी इलाक़ों में समाज न केवल कृषिप्रधान बना हुआ है, बल्कि अपनी पशुपालक वाली शैली भी जीवंत रखने की पुरज़ोर कोशिश करता नज़र आता है।[34] ऐसे कई अनछुए पहलू अभी बाक़ी हैं जिन पर और अधिक शोध की ज़रूरत है। शोधार्थियों के लिए नयी दिशा में शोध की सम्भावनाएँ मौजूद हैं। मानसून से जुड़े सामाजिक सरोकारों और पहलुओं के अध्ययन से तत्कालीन समाज की ज़्यादा बेहतर तस्वीर हमारे सामने उजागर हो सकती है।

इस विषय पर चर्चा आज और ज़रूरी हो गयी है, क्योंकि विश्व पर्यावरण-परिवर्तन की समस्या से जूझ रहा है। मैंने शुरुआत में ही कहा था कि पर्यावरण की प्रकृति में परिवर्तन निहित है। परंतु आज के पर्यावरणीय-परिवर्तन की गति काफ़ी तेज़ है। दूसरी और बदक़िस्मती से औद्योगिक विकास ने समाज के लिए प्रकृति को महज़ एक रासायनिक-भौतिक प्रक्रिया में बदल दिया है। समाज का प्रकृति से भावनात्मक और वैचारिक तारतम्य ख़त्म सा हो गया है। यह बात चिंता की इसलिए भी है क्योंकि अब मानव पर्यावरणीय बदलाव से तारतम्य बनाने के बजाए तकनीक और विज्ञान के सहारे पर्यावरण बदलने का रास्ता खोजता नज़र आता है। तकनीक और विज्ञान ने मानव-समाज को यह ग़ुरूर भी दिया कि प्रकृति को मनुष्य के अनुसार ढलना पड़ेगा

अपनी पुस्तक *डर्ट : दि इरोज़न ऑफ़ सिविलाइज़ेशन* में डेविड आर. मोंटगोमरी ने दिखाने की कोशिश की है कि पर्यावरणीय बदलाव से तारतम्य बनाने में चूक जाने वाले समाज का भविष्य अंधकारमय हो जाता है। मध्यकालीन समाज ने मानसून में निहित परिवर्तनशीलता को सहज रूप से स्वीकार करके उसके अनुसार अपनी जीवन-शैली को ढाल लिया था। बदक़िस्मती से कुछ ऐतिहासिक वजहों से और कुछ विज्ञान और तकनीक पर अंध-निर्भरता ने शायद समाज की प्रकृति से सामंजस्य बना पाने की इच्छा और शक्ति को कमज़ोर कर दिया है। आज ज़रूरत यह है कि प्रकृति को बदलने के बजाय उसका पर्यावरणीय बदलाव से सामंजस्य बिठाया जाए।

---

[32] माधवी बाजेकल (1990).

[33] अर्जदास्त, जेठ सुदी चार संवत् 1742, व माघ बदी नौ संवत् 1765, फ़ागुन सुदी दो संवत् 1743, आषाढ़ सुदी दो संवत् 1762, चैत बदी सात संवत् 1752, हिस्टोरिकल सेक्शन, जयपुर रिकार्ड, राजस्थान स्टेट ऑर्काइव्ज़, बीकानेर, मयंक कुमार (2013), वही : 187-89.

[34] पूर्णेंदु कावूरी (1999).

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 615

संदर्भ

अनुपम मिश्र (1995), *राजस्थान की रजत बूँदें,* गांधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली.

अनिल अग्रवाल और सुनीता नारायण (सम्पा.) (1997), *डाइंग विज़्डम : राइज़, फ़ॉल ऐंड पोटेंशियल ऑफ़ इण्डियाज़ ट्रेडिशनल वाटर हारवेस्टिंग सिस्टम्स,* सेंटर फ़ॉर साइंस ऐंड इनवायरनमेंट, नयी दिल्ली.

अर्जदास्त, जेठ सुदी चार संवत् 1742, व माघ बदी नौ संवत् 1765, फ़ागुन सुदी दो संवत् 1743, आसाढ़ सुदी दो संवत् 1762, चैत बदी सात संवत् 1752, हिस्टोरिकल सेक्शन, जयपुर रिकार्ड, राजस्थान स्टेट ऑर्काइव्ज़, बीकानेर.

अर्जदास्त, भादवा सुदी छह संवत् 1774, हिस्टोरिकल सेक्शन, जयपुर रिकार्ड, राजस्थान स्टेट ऑर्काइव्ज़, बीकानेर.

आर.के. यादव (2009), 'चेंजेज़ इन दि लार्ज-स्केल फ़ीचर्स ऐसोसिएटेड विद दि इण्डियन समर मानसून इन दि रिसेंट डिकेड्स', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ क्लाइमेटोलॅजी,* अंक 29.

इरफ़ान हबीब (1985), *मेडिवल टेक्नोलॅजी : एक्सचेंज़ बिटवीन इण्डिया ऐंड दि इस्लामिक वर्ल्ड,* विबेआ पब्लिकेशन, अलीगढ़.

एस. अली. नदीम रिज़वी (1995), 'कुलधारा इन जैसलमेर स्टेट सोशल ऐंड इकॉनॉमिक इम्पलीकेशंस ऑफ़ द रिमेंस ऑफ़ मेडिवल सेटलमेंटस्', *प्रॉसिडिंग्स ऑफ़ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 56वाँ सत्र, रवींद्र भारती, कलकत्ता.

एम.के .धवालिकर (1992), 'एनवाइरनमेंट इंटरफ़ेस : ए. हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव'; अध्यक्षीय व्याख्यान, इकॉलॅजी न्यूमिसमेटिक ऐंड इपिग्राफ़ी सेक्शन, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 52वाँ सत्र.

कन्हैयालाल सहल (1956), 'राजस्थान की वर्षा संबंधी कहावतें', *मरुभारती,* खण्ड 4.

*जैसलमेर री खयात, परम्परा, (*सम्पा.) नारायण सिंह माही, भाग- 57-58, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर.

जी.एस.एल. देवड़ा (1999), 'डिज़र्टिफ़िकेशन ऐंड प्राब्लम ऑफ़ डिलिमिटेशन ऑफ़ राजपुताना डेज़र्ट ड्यूरिंग द मेडिवल पीरियड', *ह्यूमन इकॉलॅजि,* विशेषांक 7.

जी.एस.एल.देवड़ा (1999), 'प्रॉब्लम इन दि डिलिमिटेशन ऑफ़ दि राजपुताना डज़र्ट ड्यूरिंग द मेडिवल पीरियड', राकेश हूजा और राजेंद्र जोशी (सम्पा.) *डेज़र्ट, ड्राउट ऐंड डिवेलपमेंट : स्टडीज़ इन रिसर्च मैनेजमेंट ऐंड सस्टेनेबिलिटी,* रावत पब्लिकेशन, जयपुर.

जी.एस.एल. देवड़ा (2010), 'फ़िज़ियोग्राफ़ी ऐंड इनवाइरनमेंट ऑफ़ थार डेज़र्ट ऑफ़ इण्डियन सब-कांटिनेंट ड्यूरिंग सेवंथ ऐंड ऐट्थ सेंचुरी', ड्रॉफ़्ट पेपर, दि इंस्टीट्यूट ऑफ़ राजस्थान स्टडीज़, जयपुर.

जूलिया हेगेबाल्द (2009), 'वॉटर आर्किटेक्चर इन राजस्थान', गिलीज टिलस्टोन (सम्पा.), *स्टोंस इन दि सैंड : दि आर्किटेक्चर ऑफ़ राजस्थान,* मार्ग पब्लिकेशन, मुंबई : 78-89; मोरना लिविंगस्टोन (2002), *स्टेप्स टू वाटर : दि एंशिएट स्टेपवेल्स ऑफ़ इण्डिया,* प्रिंसटन आर्किटेक्चर प्रेस, न्यूयार्क.

टी.के . राजलक्ष्मी (2002), 'दि रिडल ऑफ़ अ रिवर', *फ्रंटलाइन,* खण्ड 19, भाग 16.

डेविड आर. मोंटगोमरी (2007), *डर्ट : दि इरोज़न ऑफ़ सिविलाइज़ेशन,* यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बरकले.

दशरथ शर्मा (1966), *राजस्थान थ्रू दि एजेज़,* राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज़, बीकानेर.

दीप नारायण पांडेय, अनिल के. गुप्ता और डेविड एम. ऐण्डरसन (2003), 'रेनवाटर हारवैस्टिंग एज़ एन एडेप्टशन टू क्लाइमेट चेंज', *करंट साइंस,* खण्ड 85, अंक 1.

पी.के. दास (1968), *इण्डियन मानसून,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, संशोधित संस्करण : 2002.

फ्रांसिस ज़िमरमैन (1987), 'मानसून इन ट्रेडिशनल कल्चर', जे.एस. फ़ेन और पी.एल. स्टीफंस (सम्पा.), *मानसून,* जॉन वैली ऐंड संस, न्यूयॉर्क.

पी.सी.डी. मिल्ली व अन्य (2008), 'स्टेशनॅरेटी इज डेड : विदर वाटर मैनेजमेंट', *साइंस,* 319.

पूजा नागरथ (2008), 'ए कम्पेरेटिव एनालैसिस ऑफ़ रेनवाटर हारवैस्टिंग प्रेक्टिस इम्प्लीमेंटेड इन ऐरिज़ोना ऐंड राजस्थान, अप्रकाशित प्रबंध, एरिज़ोना स्टेट युनिवर्सिटी, टेम्पे.

पूर्रेंदु कावूरी (1999), *पैस्टोरिलिज़म इन एक्सपेंशन : दि ट्रांसह्यूमिंग हड्र्स ऑफ़ वेस्टर्न राजस्थान,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

बी.एम. फ़गान (2008), *दि ग्रेट वार्मिंग : क्लाइमेट चेंज ऐंड दि राइज़ ऐंड फ़ॉल ऑफ़ सिविलाइज़ेशंस,* ब्लूम्सबरी प्रेस, न्यूयार्क.

18mayank:Layout 1 2/5/2016 3:57 PM Page 616

बी.ए. वॉरेन (1987), 'ऐंसिएंट ऐंड मेडिवल रिकॉर्ड्स ऑफ़ द मानसून विन्ड्स ऐंड करंट्स ऑफ़ द इण्डियन ओशन', जे.एस. फ़ेन और पी.एल. स्टीफंस (सम्पा.), *इन मानसून,* जॉन वैली ऐंड संस, न्यूयॉर्क.

मयंक कुमार (2013), *मानसून इकोलॅजीज़ : इरिगेशन, एग्रीकल्चर ऐंड सेटलमेंट पैटर्न इन प्रिकोलोनियल राजस्थान,* मनोहर, नयी दिल्ली.

मयंक कुमार (2014), 'ऐडेप्टेशन टू क्लाइमेट वैरीबलिटी : इर्रीगेशन, ऐंड सेटलमेंट्स इन अर्ली मेडिवल राजस्थान', *दि मिडेवल हिस्ट्री जर्नल,* खण्ड 17, न. 1.

मुंहता नैणसी (1673/1968-74), *मारवाड रा परगना री विगत,* तीन खण्ड (सम्पा.), नारायण सिंह भाटी, राजस्थान प्राच्यविद्या शोध संस्थान, जोधपुर.

माधवी बाजेकल (1990), 'एग्रीकल्चर प्रोडक्शन इन सिक्स सेलेक्टेड क़स्बा ऑफ़ इस्टर्न राजस्थान (1700-1780), अप्रकाशित प्रबंध, युनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन, लंदन.

मेजर सर्जन सी.एफ़. ऑलडम (1893), 'दि सरस्वती ऐंड दि लोस्ट रिवर ऑफ़ दि इण्डियन डेज़र्ट', *जर्नल ऑफ़ रॉयल सोसाइटी.*

शंकर जय शंकर देव (1956), 'प्रकृति से वर्षा ज्ञान की बानगी', *राजस्थान भारती,* खण्ड 6, न. 3-4.

स्पूनर ब्रेन (1988), 'बलूचिस्तानिज़ जियोग्राफ़ी, हिस्ट्री ऐंड एथनॉग्राफ़ी', एहसान यारंस्टर (सम्पा.), *दि इनसाइक्लोपीडिया इरानिआ,* सेंटर फ़ॉर इरानियन स्टडीज़, कोलम्बिया युनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क.